www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-10* *October 2025***

बुन्देली लोकगीतों में स्त्री अनुष्ठान

प्रीति सिंह

शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

डॉ0 अलका मौय

शोध निर्देशिका, प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, शासकीय कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर स्वशीसी महाविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

सारांश

लोकगीतों में मानव जीवन का स्वाभाविक स्वरूप स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। उनके जीवन के सुख–दुःख, आशा–निराशा, पीड़ा–वेदना, इच्छा–कामना, हर्ष–उल्लास आदि बड़े ही मार्मिक व मधुर, सरल, सजीव भाव से दिखायी पड़ते हैं। लोकगीत के इन्हीं सजीवता, सरलता, मधुरता, स्वाभाविकता एवं संगीतात्मकता का जो गुण होता है वही गुण वास्तव में साधारणजन के जीवन में निहित रहता है तथा उनके जीवनचर्या का गुण भी होता है। साधारण जीवनयापन करने वाले लोगों के जीवन में जो भी भावनाएं उनके हृदय में हिलोरे मारती हैं उन्हें वह लोकगीतों के माध्यम से वैसे ही प्रस्तुत करते हैं, जैसे उनके वास्तविक जीवन में घटित होते हैं। मूलरूप से लोकगीत मानव के भावनाओं और क्रियाओं से संबंधित होते हैं। मानव के जीवन के उन सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं की निरंतर बहने वाली धारा लोकगीत का रूप धारण कर लेती है। उस सागर रूपी लोकगीत में मिलने वाली भावनाओं के बूंद जब स्वर, लय, ताल, शब्द को संजोंकर छलकती हैं तो उसका साधारणजन रसपान करता है, वही लोकगीत है। इस तरह की प्रवृत्ति, भावना तथा प्राकृतिक सम्पदा की सहयोग करने वाले लोकगीतों को केवल रूप, आकार के आधार पर उन्हें वर्गो में बाँटना हल नहीं हो सकता। क्योंकि वर्तमान में जितने भी विद्वानों ने लोकगीतों के वर्गीकरण का प्रयास किया है, वह बाहरी आवरण और दूरदृष्टि पर ही आध ाारित हैं। लोकगीतों की मूल भावना, प्राकृतिक परिवेश को समझ कर, उन्हें ऐसे बाँटा जाय जो मानव जीवन के विविधता और सम्पूर्णता को अपने में समाहित करती हैं। ग्रामीण समाज में अधिकतर किसान व मजदूर सम्मलित हैं। खेती–किसानी से थक हार कर आते हैं। मनोरंजन के साधन वह अपनी थकान मिटाने के लिए खोजते हैं उनको नाटकों का आसरा मिलना दिन भर की मजूदरी मिलने के बराबर होता हैं। तीज त्यौहार के साथ–साथ समाज में कई रीति–रिवाजों का होना रहता है। विभिन्न रिवाजों के साथ वर्ष भर कर्तव्य व जिम्मेदारियाँ निभानी होती हैं। विवाह को लेकर भी समाज में लोग गंभीरता से सोचते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में विवाह एक घर में हो तो भी पूरा गाँव खुशी मानता है। इनके बीच पूरे समाज में शुभ अवसरों की हलचल मची रहती है। ये खुशी के पल सभी मनुष्यों के जीवन में आते हैं। इन पलों को जीने के लिए मनुष्य जीवन की रेस में सम्मिलित है। नाट्य कला विवाह संस्कार में रोचकता पैदा करने मं मददगार होती है। रावला नृत्य कला बुन्देखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न जातियों के लिए तो सिर मौर है रावला नाट्य का आयोजन कर वह अपना मनोरंजन करने में सफल होते हैं।

पुत्र कल्याणार्थ

जन्म संस्कार के अवसर पर सोहर गाने की प्रथा सदियों से चली आ रही है जिसको सोहरों तथा मंगलगीत आदि नामों से जाना जाता है, जिसकी चर्चा तुलसी दास जी ने रामचरितमानस में, राम जी के जन्म अवसर पर गाये गये गीतों को दिया है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में प्रसन्नता का भाव तथा वह वेदना भी सम्मिलित है जिसको महिलाएं अपने जीवन में भोग चुकी हुई होती हैं। उन गीतों में उनके हर्ष–उल्लास, उत्साह, कुल की उन्नत्ति, उनकी पीड़ा वेदना,

आदि सोहर के वर्ण्य विषय होते हैं, जिसको गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। पुत्र की लालसा सभी में होती है। उसके लिए मानव अनेक विधि–विधान, मनौतियों की कामना करता है और इन सभी पक्षों का सोहर गीतों में वर्णन कोमल लोककंठों द्वारा सुन्दर ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाता है। पुत्र प्राप्ति के पश्चात् सोहर गाने की प्रक्रिया माता के मायके से आरम्भ होती है, जिसको बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में 'माटी जगाना' कहते हैं। जिसमें अपने कुल के पुर्वजों तथा लोक देवी–देवताओं से मनौती की जाती है और बच्चे की कुशलता के लिए उन पुर्वजों तथा देवी–देवताओं से उनकी रक्षा के लिए आग्रह किया जाता है। सोहर गीतों में गर्भाधान से लेकर धाय का बुलाना, घर–परिवार की प्रसन्नता तथा अन्न–ध ान लुटाने के उच्छाह आदि की झाँकी देखने को मिलती है। सोहर गाने की प्रक्रिया छरू दिनों तक चलती रहती है। इसमें पास–पड़ोस की महिलाएं एकत्रित होकर 'सुतिका गृह' (जिसको भोजपुरी में 'सऊरी' कहते हैं जिसमें जच्चा–बच्चा दोनों होते हैं) के द्वार पर बैठकर गीतों के माध्यम से सभी का मनोरंजन कराती हैं तथा परिवार के आनन्द से सम्बन्धित अनेक पक्षों को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती है। 'सुतिका गृह' के द्वार पर 'बोरसी' अंगीठी, उपली तथा धान की भूसी से आग छः दिनों तक जलाने की मान्यता है। यह आग सदैव जलती रहनी चाहिए, ताकि इस 'सुतिका गृह' में कोई नकारात्मक शनि प्रवेश न कर जाय। 'छठी' किसी शुभ दिन रविवार या मंगलवार को किया जाता है जिसमें जच्चा–बच्चा दोनों को घर से पहली बार बाहर निकाला जाता है और उसको पूरे विधि–विधान के साथ स्नान कराकर किसी शुभ कार्य को करने की अनुमति दी जाती है। इस अवसर पर उनको रानी बनाकर रक्खा जाता है, उसके बाद सोहर गाने वाली महिलाओं तथा उपस्थित जन को मिठाई और पान दिया जाता है। छठी के बाद दस दिनों में गर्भवती के मायके से बधावा आता है। उस बधावा में मायके वाले अपनी समर्थता के अनुसार अपनी बेटी को उपहार के रूप में खाने से लेकर सभी प्रकार की वस्तुएं उपलब्ध कराते हैं तथा उस क्षण को महिलाएं 'पहपट गीत' गाकर अपनी खुशियों को जाहिर करती हैं इस पहपट धुन में महिलाएं गीत के साथ नृत्य भी करती हैं। उसके बाद बारह दिनों में बरही पड़ती है जिसमें परिवार वाले अपने पास–पड़ोस, परिवारजन को उत्साह के साथ भोजन कराते हैं और खुशियों को जाहिर करने के लिए भव्य कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

पति कल्याणार्थ

बुन्देलखण्डी महिलाओं में सुहाग के प्रतीक में सिन्दूर, लाली बिन्दी, काँच की चूड़ियाँ तथा बिछियाँ धारण करने की परम्परा रही है। विवाह संस्कार में इन प्रतीकों को धारण कर सौभाग्यवती कहलाती हैं। बुन्देलखण्डी गीतों में सुहाग चिन्ह सिन्दूर, चूड़ी का वर्णन है–

"माँग चमके चम–चम सेंदूर के लाली रे सुवना, के सुघर दिखते एहाती
मुठा भर–भर चूरी चढ़े हे हात म रे सुवना, के सुग्धर सजे जस फूलवारी।
ए दे साजन, साजन कर जियत भर माँग में सेंन्दूर।"

यथार्थ में उसका असली सुहाग उसका पति ही होता है। उनके जीवित रहते तक सौभाग्यवती बने रहने के लिए इन चिन्हों को बड़ी श्रद्धा और आस्था से अपनाती है और उसके न रहने पर इन चिन्हों को त्याग देती है। उपर्युक्त गीत में नारी अपना असली सुहाग पति को मानती है, उनके रहने पर वह इन चिन्हों को धारण करती है। सच्चाई यह भी है ये सुहाग चिन्ह नारी को अपूर्व सौन्दर्य प्रदान करते हैं, बिन्दी, सिन्दूर, चूड़ी, बिछियाँ नारी को यू ही नहीं लुभाते बल्कि यह उसको अपूर्व गरिमा प्रदान कर एक सुरक्षा का एहसास भी दिलाते हैं। किन्तु यह उसके खुषहाल जीवन का प्रमाण नहीं है। मैत्रेयी पुष्पा सुहाग चिन्हों पर लिखती हैं कि "तो यह रहा कि चूड़ी, बिछिया की कसावट और मंगलसूत्र का वजन जितना ज्यादा माना जायेगा स्त्री की जिन्दगी की गारंटी उतनी ही रहेगी। ताज्जुब कि इन चीजों को पुरुमा धारण नहीं करता, फिर भी वह विवाहित रहता है, जिन्दा रहता है, मंगलसूत्र उसके मंगल के लिए होता है। लटकाये होती है पत्नी।" वास्तव में यह सुहाग चिन्हों को धारण करने की अनिवार्यता नारी को मानसिक स्तर पर गुलाम बनाती है।

बुंदेलखण्ड अंचल की महिलाएँ त्याग, तपस्या, बलिदान के रूप में पूजी जाती है। यहाँ लोग बेटी को अधिक महत्व नहीं देते हैं। यहाँ पुत्र जन्म को अधिक महत्व दिया जाता है। अशिक्षा व अल्पशिक्षा के कारण ग्रामीण लोग जनसंख्या नियंत्रण से अनभिज्ञ थे इसलिए आज भी परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक है। बेटियों के जन्म से असन्तुष्ट माता–पिता पुत्र की उम्मीद में परिवार बढ़ाते रहते हैं। बेटियाँ पिता की अचल संपत्ति का हिस्सा नहीं मानी जाती हैं। बुंदेली कहावतों में प्रचलित हैं–

बाप कै बिटिया साठ तोऊ बाप की नाठ

इस कहावत का अर्थ है कि पिता की बेटियाँ भले ही अनेक है पर घर का वारिश नहीं होती हैं। अब पुरानी मान्यताओं में कुछ परिवर्तन होने लगा है। बुंदेली समाज में नारी की सामाजिक स्थिति पितृ सत्तात्मक है।

इसलिए आज बुंदेलखण्ड में भी नारी को पिता, पति की सम्पत्ति का हिस्सा बनाया जा रहा है।

मनुष्य नारी के बिना अधूरा माना जाता है। नारी पुरुष की अर्धांगिनी है। सभी सामाजिक, पारिवारिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्री भी पुरुष के समान है। सामूहिक अनुष्ठानों में पति–पत्नी के जोड़े को अधिक महत्व दिया जाता है। एक की अनुपस्थिति में कार्य पूर्ण नहीं किया जा सकता है। यज्ञ, कन्यादान, पैर पूजन, आदि कार्यक्रमों में पति के साथ गठबंधन कर पत्नी को बैठना पड़ता है। गठबंधन करके ही ये कार्य पूर्ण किये जाते हैं। महिलाओं को गृहणी का नाम इन्हीं अधिकारों के उपरान्त ही प्राप्त हुआ है। घर के अधिकतर कार्य महिलायें ही संभालती हैं। इसलिए घर के कार्यों की जिम्मेदारी महिलाओं को सौंप दी जाती है। वर्तमान में महिलाओं का स्थान समाज में बराबर होता जा रहा है। अब पंचायतों में महिलाओं को भी तर्क–वितर्क देने का मौका दिया जाता है। समाज महिलाओं को बुलाकर पक्ष–विपक्ष रखने के लिए अनुमति देने लगा है। आज नारियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं। महिलाओं को उनकी योग्यता के अनुसार स्वतंत्रता है। बुंदेलखण्ड में अब महिलाओं को किसी पद अथवा स्थान को प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता है।

बुंदेलखण्ड आंचलिक समाज होने के कारण कई समस्याओं से जूझते हैं। गाँव में आज भी नारी स्वतंत्रता कम जान पड़ती है, परंतु अब महिलाऐं अपने परिवार में स्वतंत्र तो हैं लेकिन पुरुषों की अपेक्षा सम्पूर्ण अधिकार नहीं रखती है। समाज एवं समुदाय से बंधे लोग पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं। बुंदेलखण्ड में आज भी नारी का स्थान कुछ हद तक नीचा होता है। बुन्देली ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश शिक्षित, अल्पशिक्षित व पिछड़े परिवार निवासरत हैं। वह आज भी अपनी बहू–बेटियों को मनचाहे वस्त्र धारण नहीं करने देते हैं। समाज में जो वस्त्र प्रचलित हैं, वही वस्त्र उपयोग कर सकती हैं। महिलायें अपने आप मर्यादा में रहती हैं।

महिलायें पुरुषों के साथ बैठकर बड़े बूढ़ों से बात नहीं करती हैं एवं उनके साथ बैठकर भोजन नहीं करती हैं। आज भी कई ग्रामीण क्षेत्रों में अनुष्ठानों, भंडारों, विवाह एवं अन्य आयोजनों में महिलाओं का पुरुषों के के पहले भोजन करना समाज में अनुचित सा जान पड़ता है लेकिन ऐसा करने में महिलाओं की मर्यादा रहती है और खुशी भी मिलती है। कई गाँवों में विवाह के प्रतिभोज के लिए महिलाओं को अलग से बुलावा किया जाता है। पुरुषों के भोजन के पश्चात महिला भोजन का चलन अभी भी कुछ स्थानों पर देखने को मिलता है। महिला ज्यौंनार बाद में ही करवाया जाता है।

बुन्देली आँचलिक क्षेत्र समुदाय, कुटुम्ब में बंधा हुआ है। नारी प्रचलित प्रथा, की अवहेलना नहीं कर पाती है। कई गाँवों में देखने को मिला है कि जहाँ पुरुष भोजन करते हैं, वहाँ से कोई भी स्त्री पदायता पहन कर आज भी नहीं निकलती हैं और वह अपने आप इसको मर्यादा के विरूद्ध समझतीं हैं। यह समाज की मर्यादा के विरूद्ध माना जाता है। आज बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलायें बुर्जुग सदस्यों की मर्यादा करती हैं अपनी खुशी से इनकी प्रतिष्ठा करती है। उनको स्वतंत्रता में बहुत बाधा का सामना तो करना पड़ता है। बुजुर्ग सदस्यों के सामने बोलना भी वह उनकी मर्यादा के विरुद्ध समझती हैं। सिर को हिलाकर हाँ और न में जबाव देना उनके चलन में आज भी है। कोई इंगित करके अपने पति को बुलाती हैं। अधिकांश महिलाऐं पुरुषों के नाम अपने मुँह से नहीं लेती हैं। वह कोई भी इंगित करके अपनी बात पहुँचाती हैं। वह बच्चों के नाम लेकर अपने पति को बुलाती हैं। वहीं पुरुष भी अपनी पत्नियों का नाम लेकर बड़े बुजुर्गों के सामने नहीं बुलाते हैं। ऐसा करने में उनको खुशी तो मिलती ही है साथ में अपने संस्कारों को उजागर करते हैं। अपने बुजुर्गों को सम्मान देकर छोटे होने का फर्ज निभाते हैं। आने वाली पीढ़ी भी इन अच्छे संस्कारों से परिवार व समाज को खुशी देती रहेगी।

बुंदेलखण्ड के नगरीय क्षेत्रों में यह प्रथायें मिलती तो हैं, पर अल्पसंख्या में देखने को मिलती हैं। बुर्जुग आज भी इन प्रथाओं को रूढ़िवादिता में ढाले हुए हैं, उसी को नई पीढ़ी मानती चली आ रही है। पर महिलाओं द्वारा उनको मानना इन पर अमल करना अपने अच्छे संस्कारों को उजागर करना होता है। लेकिन अब बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ परिवर्तन देखने को मिलते हैं। पहले ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न जातियों के लोग उच्च जाति एवं पूंजीपतियों, मुस्लिमों के अत्याचारों के कारण अपनी बेटियों का बाल विवाह कर देते थे, जिससे सम्मान व प्रतिष्ठा बनी रहती थी। इसी डर से पर्दा प्रथा का चलन हुआ। नारी स्वतंत्रता बुंदेलखण्ड में बहुचर्चित है। लेकिन आज हर जगह महिलाएं सुरक्षित व सम्माननीय हैं।

बुंदेलखण्ड में रीति–रिवाजों को अधिक महत्व दिया गया है। समाज में जो रीति–रिवाजों का चलन होता है। वही अपनाया जाता है, आज भी महिलायें चौपालों, बैठकों, अथाईयों पर नहीं बैठ सकतीं हैं। उनका चबूतरों पर चढ़ना अधिकतर वर्जित होता है। पूर्वजों के द्वारा बनाये गये यह नियम आज भी गाँव में देखने को मिलते हैं।

पंचायत का स्थान पर बैठे लोगों के पास से महिलायें मर्यादा में ही निकलतीं हैं। पर्दा करना महिलाओं की आदत में है और पर्दा में महिलाएं अपनी सुन्दरता को भी निखारती हैं। मुखपट शर्म और मर्यादा का प्रतीक है कुछ अन्य प्रथाएं भी हैं जैसे कुआ पनघट पर आज भी महिलायें पदायता पहन कर नहीं चढ़ती हैं। इससे पानी भरते समय कुआं पनघट का अपमान होता है। ऐसे संस्कार महिलाओं को बचपन से ही दिये जाते हैं, इनको वह स्वतः ही निभाती हैं, तथा उनको निभाना अपना कर्तव्य समझती हैं। पर्दा एक इस्लामी शब्द है। जो अरबी भाषा में फारसी भाषा से आया। इसका अर्थ होता है, "ढँकना" या "अलग करना" पर्दा प्रथा बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत महिलाओं के चलन में है और मुखपट परिवार व समाज की मर्यादा करना है। पहले समय में यह प्रथा समाज में बहुत प्रचलित थी। समाज में रहने वाली महिलायें पर्दे के बिना बाहर नहीं निकल सकती थीं।

बुंदेलखण्ड में सामाजिक परम्पराओं का अधिक महत्व है। समाज मयह परम्परा सदियों से चली आ रही है, लड़के के विवाह के समय जब पहली बार लड़की को देखने जाते हैं। तब उसको बिना घूँघट के या बिना मुखपट के देखते हैं। रिश्ता होने के पश्चात ससुराल पक्ष के किसी बड़े, बुर्जुग के सामने लड़की अधिकांश मर्यादा व सिर पर ओढ़नी डालकर ही निकलती है। शादी के दिन जब लड़की का चढ़ावा उसकी ससुराल पक्ष के बड़े बूढ़ों के द्वारा चढ़ाया जाता है। जिसमें काले छटा (काले छोटे–छोटे गुरीयों की माला) को लड़की के गले में बाँधा जाता है उसके बाद लड़की को शॉल से घूँघट कर दिया जाता है। यह शॉल लड़की को बहू बना लेने का सूचक होता है। इसके बाद बहू अपने ससुराल वालों के सामने कभी बिना घूँघट के बाहर आना स्वतः ही पसंद नहीं करती है। इस मौके पर विवाह में आई महिलाओं के द्वारा मंडप के नीचे बैठकर गीत गाये जाते हैं।

''साल उड़ाय हमारी बेटी, अपनी बहू बनाई रे
अपनी बहू बनाई ससुर ने अपनी इज्जत बनाई रे
अपनी इज्जत बनाई जेठ ने अपनी बहु बनाई रे।।

इस प्रकार से वह शॉल बहू के लिए जीवनपर्यन्त पर्दा या मर्यादा बन जाता है। पर्दा परिवार के मुखिया की प्रतिष्ठा बन जाता है। गली, घर, पनघट, खेत, खलिहान, बाजार आदि में बिना पर्दा या मर्यादा के महिलाएँ बाहर नहीं जाती हैं। पर्दा ससुर, जेठ, ननदेऊ, चाचा ससुर, फूफा ससुर, मौसा ससुर आदि को किया जाता है। यह प्रथा निम्न जातियों में अधिक देखने को मिलती है। वैसे तो बुंदेलखण्ड में पर्दा का चलन हर जाति के लोगों में है। बुंदेलखण्ड में ग्रामीण क्षेत्रों का शैक्षणिक स्तर अपेक्षाकृत कम है जिसका मुख्य कारण है। यहाँ पूर्वजों को अशिक्षित होना या उनके लिए शिक्षा की उत्तम व्यवस्था न होना इसलिए वह रूढ़िवादिता पर अधिक बल देते थे। उनका मानना था कि जो पूर्वजों से चला आ रहा है उसे बदलने में समाज की अवहेलना मानी जायेगी। इसलिए यहाँ के लोग पूर्वजों द्वारा चलायी गई प्रथाओं को तोड़ना नियम के विरूद्ध समझते थे, तथा इन प्रथाओं को नहीं तोड़ते थे। ऐसा करने पर पूर्वजों का अपमान माना जाता है। इस कारण वह अपने घर की पुत्रवधुओं को पर्दे या मर्यादा में रखते हैं। शिक्षा का बढ़ता हुआ स्तर आज इन परम्पराओं को गिराने की कोशिश कर रहा है।

आज ग्रामीण लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही है, तो अपने जीवन में यह बदलाव ला पा रही हैं एवं अपने जीवन में इन परम्पराओं के विरुद्ध आवाज उठा रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पढ़ी–लिखी लड़की को अधिक महत्व दिया जाने लगा है, इसलिए लड़की को पढ़ाना–लिखाना अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। शिक्षित होने के साथ–साथ यहाँ लड़कियों को कामकाज में निपुण, संस्कार में सफल भी होना चाहिए। घर के कामकाज को संभालने वाली लड़की को ही सर्वोपरि माना जाता है। धीरे–धीरे बुंदेलखण्ड में पर्दा प्रथा का चलन समाप्ति की ओर है, अब हर वर्ग के लोग शिक्षा को महत्व दे रहे हैं। इन प्रथाओं पर शिक्षित महिलाऐं अल्पशिक्षित व अशिक्षित महिलाओं को संगोष्ठी, नुक्कड नाटक व सभाओं के द्वारा जागृत कर रहीं हैं और पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में जागरुकता लाने के कई रूपों में उपाय किये जा रहे हैं।

बुंदेलखण्ड में शिक्षा स्तर को देखा जाए, तो महिला शिक्षा पुरुष, शिक्षा दर से कम है, ग्रामीण जन समुदाय के लोगों द्वारा महिलाओं की शिक्षा पर गाँव में अधिक जोर दिया जा रहा है लेकिन बुंदेलखण्ड के जनजाति समुदाय एवं जंगली क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग आज भी अशिक्षित व अल्पशिक्षित हैं। वह अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए महत्व कम ही देते हैं। बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में आय का साधन, जंगल, पेड़, फल, फूल, फसल, कृषि सब्जियाँ आदि हैं। यहाँ निवास करने वाले लोग छोटे–छोटे उद्योगों से जुड़े हैं, इनकी आय अधिक नहीं होती है। ये अपना जीवनयापन करने के लिए रोज मर्रा के कार्य करते हैं जिससे केवल इनके खाने–पीने

का काम चलता है। अधिक आय यहाँ के परिवार नहीं कर पाते हैं। गाँव में लोगों की आवश्यकताएँ सीमित ही होती हैं एवं आवश्यकता के अनुसार ही यह लोग कार्य करते हैं। ये लोग परिवार, कुटुम्ब, कबीलों में निवास करते हैं। यहाँ एकल परिवार कम संख्या में निवास करते हैं। ये लोग शहरों में अपनी स्त्रियों को लेकर काम करना उचित नहीं समझते हैं और अपना गुजर बसर गाँव में ही करते हैं।

बुन्देलखण्ड के लोग कुछ समय अंधकार में जीते रहें। जैसे छोटी जातियों में लोग कम उम्र में ही बेटियों की शादी कर देते थे। इस कारण लडकियाँ शिक्षित नहीं हो पाती थी एवं वह बाहरी ज्ञान एवं जानकारियों से वंचित रह जाती थी। उनकी शादी मात्र से ही अपना कर्तव्य पूर्ण मानते थे। कम उम्र में शादी करने की ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परा थी, लेकिन वर्तमान में बुन्देली अंचल जो नगरों के समीप निवासरत हैं, वह अपनी बेटियों को शिक्षित व योग्य बनाकर ही विवाह करना अपना कर्तव्य समझते हैं। जंगल के किनारे निवास करने वाली कुछ निम्न जातियों में यह प्रथा आज भी है। किसी क्षेत्र विशेष के रीति–रिवाज, चाल–चलन आदि का मिश्रित रूप संस्कृति कहलाती है। दैनिक जीवन में उन्ही क्रियाकलापों का चित्रण होता है। इसी संस्कृति के पावन चित्रों की झांकी जीवन की ललित कलाओं को प्रस्तुत करती है। संस्कृति का अनेक रूपों में वर्णन बुन्देखण्ड में भरा पड़ा है। बुन्देली संस्कृति का चित्रण लोक जीवन में दिखाई देता है। इस प्रकार यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि संस्कृति जीवन के विभिन्न रूपों में समाई हुई हैं। ''बुन्देलखण्ड के भू–भाग की संस्कृति के दर्शन यहाँ के प्रत्येक नगर और ग्राम में प्राय समान रूप में होते हैं। तीज त्यौहार व्रत उत्सव तथा मेले भी प्रायः एक ही ढंग के प्रतीत होते हैं।''

ग्रामीण क्षेत्र के जन समुदाय अशिक्षित होने के साथ–साथ रूढ़िवादी भी है। यहाँ निवास करने वाले लोग पूर्वजों द्वारा बनाये गए नियम नहीं तोड़ते हैं। यहाँ के लोग रूढ़ीवादिता को अधिक महत्व देते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही परम्परा ग्रामीण लोग मानते हैं, यह नारी अशिक्षा का मुख्य कारण है। स्त्रियों को अकेले जाना मर्यादित नहीं मानते हैं। अधिकतर बुजुर्गों का मानना है कि वह घर से बाहर मर्यादित नहीं होती है। लड़कियों को श्रम की ओर ले जाना ग्रामीण प्रथाओं में मुख्य रूप से सम्मलित है। इसलिए महिलायें शिक्षा से बंचित रह जाती हैं।

भाई कल्याणार्थ

रक्षाबन्धन बच्चन भाई–बहन के परस्पर विशुद्ध प्रेम का त्यौहार है। इसे भ्रातृ–पूजन कहना अनुचित न होगा। यह श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस दिन रक्षाबन्धन और श्रावणी दो त्यौहार किये जाते है। 'साहुन' श्रावणी या श्रावण का बुन्देली रूप है। बहनें साल भर इस त्यौहार की बेसब्री से प्रतीक्षा करती हैं। इस दिन घर को लीप–पोत कर साफ सुथरा किया जाता है। भाई–बहन नये परिधान में सुसज्जित होते हैं। बहन–भाई के माधे पर रोली–अक्षत का टीका करती है। उसकी कलाई में रक्षा–सूत्र बांध कर आरती उतारती है। फल–मिठाई खिलाती है और एवज में नेग–दस्तूर प्राप्त करती है। इस त्यौहार की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए काका कालेलकर ने लिखा है–''यह दिन रक्षाबन्धन का है, जिस तरह भाई दूज निष्काम प्रेम का दिन है वैसा यह दिन नहीं, यह तो निष्काम–रीति से रक्ष्य–रक्षक का नाता जोड़ने का दिन है। जो लोग स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते, दया करना नहीं चाहते, वे जिन लोगों पर उनका पूरा–पूरा भरोसा होता है, उनसे रक्षा की अपेक्षा रखते है। इसका प्रतीक है राखी। स्त्रियाँ, ब्राह्मण और गाय ये तीन वर्ग रक्षा के अधिकारी माने जाते है।''

बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में लोग आज भी जंगली क्षेत्रों में निवास करते हैं। उनके पास आज भी कई सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, जंगली क्षेत्र से जुड़े गाँव आज भी पिछड़े हुए हैं। अधिकतर इनको रोजगार के साधन नहीं मिल पा रहे हैं। स्कूल, चिकित्सालय, इंटरनेट आदि की सुविधाएँ आज भी इन्हें पूर्ण रूप से नहीं मिल पा रही हैं। स्कूल की दूरी अधिक होने के कारण कुछ लोग अपनी बेटियों को पढ़ाने के लिए बिरले ही भेजते हैं। वर्तमान में इसका सुधार पूर्ण रूप से होता चला आ रहा है। इलेक्ट्रॉनिक डिवाइसों का उपयोग यहाँ कम हो पाता है। वह जनहित में जारी समाचारों का पठन–पाठन कर जागृति ला रहे हैं। इस प्रकार से उन्नति एवं जागृति की सूचनाएँ समय पर ग्रामीण क्षेत्रों में भी प्राप्त की जा रही हैं।

पर्व–त्योहार

कजरी : ऋतुओं ने युगों–युगों से चेतन, अचेतन सभी प्रोणियों को मोहित किया है। यही कारण है कि इसे साहित्य और संगीत में अनन्त काल से महत्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है। संस्कृत के अनेक कवियों ने पावस की

बड़ी भावपूर्ण कल्पनायें की हैं। कालिदास जी ने ऋतुओं में पावस ऋतु का कितना सुन्दर उल्लेख किया है जल की फुहारों से भरा हुआ, बादल मतवाले हाथी पर चढ़ाकर, विद्युत् की पताका फहराता हुआ, मेघ–गर्जन की मृदंग–ध्वनि करता हुआ धरती पर राजसी ठाठ–बाट से उतरता है।

पावस की महत्ता मात्र इसके सौन्दर्य को लेकर नहीं, बल्कि उस लक्ष्य के लिये भी है जिससे खेतों मे हरियाली आती है, धरती पर अन्न पैदा होता है और उसी अन्न से प्राणिमात्र का भरण–पोमाण होता है और उत्साह मनाता है वर्मा के भौगोलिक प्रभाव के कारण ही इस देश के लोकगीतों में वर्षा ऋतु के प्रति प्रीतिपूर्ण भावों का उदय हुआ है।

भारत में प्रत्येक ऋतु का पृथक् संगीत है। प्रत्येक ऋतु देश के सामूहिक सौन्दर्य–बोध की परिचायिका है। शरद्–ऋतु में धान के खेतों और कमल–वनों का मोहक सौन्दर्य आँखों को ठगता है। वसन्त में टेसू और सेमल का मेला लगता है, और ग्रीष्म में शाखाओं पर अमलतास के बौर–फूलझूलते हैं। पावस में वर्षा का ठण्डा सोंध ा हुवा लता और तरू–पल्लवों में सख्य भाव जगाता है। मेघाच्छन्न आकाश लोकगीतों का उद्गम बनता है और किसी न किसी रूप में भारत का प्रत्येक जनपद वर्षा–मंगल की प्रेरणा से झूम उठता है। कृषि के सम्पूर्ण फलों को देने वाले ये मेघ पृथ्वी के सच्चे कल्याणार्थ हैं। कजरी नामकरण श्रावण मास में घिरने वाले काजल सरीखे बादलों की कालिमा के कारण हुआ है। काजल शब्द 'कज्जल' का अपभ्रंश है, इसी से 'कज्जली' शब्द बन है जिसे बोलचाल की भाषा में 'कजली' या 'कजरी' कहा जाता है। काजल–सरीखे कजरारे बादलों को देखकर गाने की कल्पना को लेकर ही वर्षाकालीन गीत–विशेष को कजली या कजरी नाम दे दिया गया है। वर्षा के बादलों में कुंज मेघ और भरे काले मेघ उल्लेखनीय है। स्पष्ट है कि मेघों का कजरारापन ही कजरी–गीतों के नामकरण का निदान बना।

भादों की कृष्ण पक्ष की तृतीया को भी एक त्यौहार मनाया जाता है, जिसे 'कजली व्रत' कहते हैं। यह स्त्रियों का त्यौहार है और इस त्यौहार पर कजली देवी की पूजा की जाती है। इस दिन स्त्रियाँ रातभर जागरण करती हैं और सुन्दर तथा श्रृंगार रस–प्रधान गीतों को गाकर मनोरंजन करती हैं। इस त्यौहार के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'कजली' कहते हैं। कजली के सन्दर्भ में भारतेन्दु जी की कहानी में ऐतिहासिक अंश कितना है, यह कहना कठिन है, किन्तु कजली तीज के दिन गाये जाने के कारण इस गीत का नाम 'कजली' पड़ा, इस कथन में तथ्य है। ग्रियर्सन जी ने भी कजली के नामकरण का यही कारण बताया है–

कइसे खेले जइबू सावन में कजरिया बदरिया घेरी आयी ननदी।

सम्भवतः सावन–भादों के महीने में वृक्षों की डाल पर झूला–झूलने और वर्षा का आनन्द लेने से इसका सम्बन्ध ा है। कजरी के उद्भव का कारण चाहे जो रहा हो, किन्तु इतना निश्चित है कि इसके मूल में बादलों की श्याम छटा एक बड़ा कारण रहा है। सूरदास जी ने वर्षा की इसी श्याम छटा का वर्णन किया है–

जहँ देखो तहँ स्याममयी है स्यामकुंज वन यमुना स्यामा स्याम स्याम घन घटा छई है।

कजली गीतों को सर्वप्रथम किसने लिखा है, यह कहना कठिन है, परन्तु आज से लगभग डेढ़ सौ वर्मा पहले भोजपुरी सन्त कवियों, विशेषकर लक्ष्मीसखी की रचनाओं में कजली, चौमासा आदि गीत उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु युग, 'कजरी का स्वर्णयुग' कहा जाता है, जब साहित्य, संगीत एवं लोक–जीवन में कजरी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। भावुक, शब्द–चयन और लोकप्रियता के कारण कजरी ने साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया।

पावस ऋतु के आते ही जन–जन के अन्तः का संगीत चारों ओर हरियाली देखकर मुखर हो उठता है। धुले हुए वृक्ष अनोखी मनोरमता से विभूसित हो उठते हैं। काले–काले मेघों को आकाश में घिरता देखकर मोर नाचने लगता है। दादुर राग अलापते सुनाई पड़ता है। बागों में झूले पड़ जाते हैं। प्रतिदिन नये गीत, नये स्वरों में विविध ा भाव झूले के दोलन के साथ होता है। पावस के गीत लगभग चार महीने तक गाये जाते हैं, किन्तु सावन पावस के सबसे निकट है तो इस ऋतु में गाये जाने वाले गीतों को 'सावन के गीतों' की संज्ञा भी दी जा सकती है। इनमें छोटी–बड़ी कथाएँ होती हैं। मुनक गीतों में कथाएं नहीं होती। इनमें तरह–तरह के मिलन–विरह सम्बन्ध ी मनोभाव पाये जा सकते हैं।

कजरी मुनक गीत है जो वर्षाऋतु में गाया जाता है। इसमें वर्षा का वर्णन, किसी विरहिणी के मनोभाव आदि का चित्रण मुख्य रूप से होता है। ये गीत स्त्रियों के स्वरों में अधिक आकर्षक लगते हैं। उनके गीत हृदय की व्यथा, कोमल एवं श्रृंगारी भावना से परिपूर्ण होते हैं।

ननदि भऊजिया मिल झलूआ नववलि हो, अरे झलूआ नववलि हो अरे
अल्हर नीबूरवाँ क झूलूअवाँ सरगवाँ मेड़ रइलै रे,
अरे जियरा पापि बहुत डेराय काले कजरा रे
अस केहू रहतै अरे रसिया विरसिया रे,–2
अरे पवलूअवाँ धई लेत कारे कजरा रे।

मूलतः कजरी का वर्ण्य–विषय प्रेम श्रृंगार के उभय पक्ष–संयोग एवं वियोग की झाँकी मिलती है। एक कजरी गीत में पति–पत्नी के मान–मनुहार की भी कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति है– पत्नी कहती है–''तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ मेरे स्वामी, अबके सावन विदेश न जाओ।'' पति कहता है–''तुम कितना ही मनाओ, मै इस सावन में मोरंग जरूर जाऊँगा।'' हारकर पत्नी काली बदली से निवेदन करती है कि ''तुम मूसलाधार बरसो ताकि मेरे पति की यात्रा न हो सके।'' पति कहता है– ''तुम लाख कहो, मैं छाता ओढ़ती जाऊँगा।'' पति जाने की जिद करता है और पत्नी उसे मनाने का लाख प्रयास करती है। अन्ततः पति–पत्नी की मोह और प्रयासों को देख मान जाता है और कहता है कि मैं सावन में तुम्हारे पास रहूँगा और दोनों मिल कजरी गायेंगे।

घेरी–घेरी आई कारी रे बदरिया ना–2 बदरिया ना रे –2
जब से गइले परदेश भेजे एको ना संदेश, भेजे एको ना संदेश–2
भूल गइले सईया हमरी डगरिया ना, घेरी–घेरी आई सावन में बदरिया ना।।

कजरी से जुड़े कुछ ऐसे भी गीत हैं जो पावस में कजरी गीतों के समान ही महत्व रखते हैं। बारहमासा, छः मासा, चौमासा, आदि।

बारहमासाः भोजपुरी में विशेषकर बारहमासा ही पाये जाते हैं। बारहमासा के गीत वर्षाऋतु में गाये जाते हैं। इन्हें स्त्री–पुरूष दोनों ही गाते हैं। इनमें बारहों महीने का बड़ा ही मधुर रूचिकर वर्णन होता है। इन गीतों में बहुधा कृष्ण की वियोगिनी राधा या गोपियों को आधार बनाया जाता है। इस गीत की परम्परा लोकसाहित्य में ही नहीं, अपितु शिष्ट साहित्य में भी पायी जाती है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि जायसी ने 'पद्मावत' महाकाव्य में नागमती के विरह का वर्णन अषाढ़ मास से आरम्भ करके ज्येष्ठ मास में समाप्त किया है।

बहुत पहले लोकगीत के रूप में बारहमासा प्रचलित था। जायसी जी ने उसी परम्परा का अनुसरण किया। जायसी के पश्चात् भी अनेक सन्त कवियों ने बारहमासा लिखकर विरहिणी स्त्री के दुःखों की मार्मिक अभिव्यंजना की है। बारहमासा गीतों में किसी वियोगिनी के बारह महीनों के मनोभावों का चित्रण मिलता है। एक गीत में व्यापार के लिए पति परदेश गया है। बरसों से लौटकर नहीं आया। छप्पर से पानी टपक रहा है, पर उसे छाने वाला कोई नहीं है। ऐसी दशा में विरहिणी का विरह उत्कर्ष को प्राप्त होता है।

भादों भवन सोहावन, न लागै, टासिन मोहि न सोहाई।
कातिक कन्त विदेस गइले हो, समुझि समुझि पछताई।
अगहन आवन कहि गइले ऊधो, पूस बितल भरि मास।
माघ मास जोबने के मातल, कैसे धरब जिय आस।

नीचे के इस गीत में कोई विरहिणी प्रत्येक मास में अपने दुःखों को गिनाती हुई कहती हैं –

प्रथम मास अषाढ़ सखि हो, गरजि गरजि के सुनाई।
सामी के अइसन कठिन जियरा, मास असाढ़ नहि आय।
सावन रिमझिम बुनवा बरिसे, पियवा 'भीजेला' परदेस,
पिया पिया कहि रटेले कामिनि, जंगल बोलेला मोर।।

फगुआ गीत : होली त्यौहर के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'फाग' या 'फगुआ' कहते हैं। फाल्गुन पूर्णिमा–परिवा को होली का उत्सव मनाया जाता है। अतः फाल्गुन मास में गाये जाने के कारण ही इन गीतों का नाम 'फाग' या 'फगुआ' पड़ा है। होली का अवसर गेय होने के कारण इन्हें 'होली' या 'होरी' भी कहते हैं। माघ मास ही शुक्ल पंचमी 'वसन्त पंचमी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी दिन से वसन्त का आगमन होता है और इसी दिन संवत् गाड़ा जाता है, उसी के साथ गाँव–गाँव में लोगों के अन्तरंग में इस अवसर का उमंग उमड़ता है और लोग फाग गाना आरम्भ कर देते हैं। जिसे ग्रामीण भाषा में 'ताल ठोंकना' कहते हैं। इसी दिन से गाँव के लोग किसी स्थान या किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर, द्वार पर एकत्रित होकर फाग गाते हैं और उसे सुन कर

श्रोतागण आनन्दित होते हैं। परन्तु फाग का चरम उत्कर्ष होली के दिन देखने को मिलता है। जिस दिन होली होती है उसके एक दिन पूर्व रात्री को 'होलीका दहन' होता है। जिसको भोजपुरी में 'संवत् जलाना' कहते हैं।

होली के दिन 'फाग' गाया जाता है। इस दिन गाँव के लोग किसी स्थान पर बैठकर दो दलों में बटकर झाँझ तथा जोड़ी लेकर गाते बजाते हैं। फगुआ और का अविच्छिन्न संबंध है। दोनों दलों में एक–एक अगुआ या सरदार होता है जो गीत की प्रथम कड़ी को गाकर प्रारम्भ करता है। हृदय के भीतर प्रेम का रंग भी लाल और गुलाल का रंग भी लाल। दोनों का समन्वय क्या ही अच्छा होता है? मस्त गवैयों का अगुआ फगुआ की एक कड़ी गाता है–

पहला दल– आज अवध में होरी रे रसिया।
दूसरा दल–होरी रे रसिया बरजोरी रे रसिया।
पहला दल–आज अवध में होरी रे रसिया।

इस प्रकार यह सहगान बढता चला जाता है। गीत की गति की बढ़त गाने के लय में भी वृद्धि होती चली जाती है और इस प्रकार स्वर मन्द्र से मध्य तथा तार में गीत और संगीत का स्वर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर समाप्त हो जाते हैं। सचमुच होली गाने का दृश्य बड़ा ही चित्ताकर्षक होता है। ऐसे मंगलमय अवसर पर गेय गीतों में उच्छाह एवं हर्ष का वर्णन होना स्वाभाविक है। इन गीतों में कहीं राधा और कृष्ण के होली खेलने का वर्णन है तो कहीं शिव जी 'होरी खेलते' हुए दिखाई पड़ते हैं। कहीं राम और सीता सोने की पिचकारी में रंग भरकर एक दूसरे पर डाल रहे हैं तो कहीं पवनसुत हनुमान जी लंका में होरी मचाते हुए पाये जाते हैं। राम और सीता से सम्बन्धित एक होरी का गीत इस प्रकार हैं–

फगुवा के आईल बहार ये गोरिया चुनरी रंगई हा–2
आम मोजरईले हो महुआ फूलईले–2
बहत बसन्ती बयार, ये गोरिया चुनरी रंगई हा
फगुवा के आईल बहार.....

चैत्र के मनभावन मास में 'चैता' गाया जाता है। चैत्र के महीने में गेय होने के कारण ही इसका नाम 'चैता' पड़ा है। बसन्त में चैता की बहार बड़ी आनन्ददायिनी होती है। नदी के किनारे, किसी मेले में, अमराई की शीतल छाव में, जहाँ देखिये वहीं मस्त भोजपुरी चैता गाने में तल्लीन है। लोकगीतों के जितने भी प्रकार हैं उनमें मध ुरता, सरसता, एवं कोमलता में चैता अपना सानी नहीं रखता। यह सत्य है कि सोहर और जँतसार में भी करूण रस का संचार है परन्तु हृदय को प्रभावित करने की जो शक्ति 'चैता' में पाई जाती है वह अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। इस दृष्टि से लोकगीतों में चैता को सर्वश्रेष्ठ स्थान मिलना चाहिये।

पहला दल–रामा चइत की निदियाँ बड़ी बइरिनियाँ
दूसरा दल–हो रामा, सुतलो कलमुआ
पहला दल–नाही जागे हो रामा
दूसरा दल–सुतलो बलमुआ।

इस प्रकार से क्रम चलता रहता है। पहला दल जिस स्वर में गायेगा दूसरा दल उससे ऊचे स्वर में कोरस को गायेगा। जब चैता अपने अन्तिम चरण पर पहुँचता है तो गाने अथवा बजाने वाला उच्चतम स्वर तथा तीव्र लय का प्रयोग करते हैं और घुटनों के बल बैठकर भावावेश में झुम–झुम कर गाते बजाते हैं। इसमें 'आहो रामा' की गगनभेदी ध्वनि से आकाश गूँजने लगता है। गवैयों की इस मंत्रमुग्धता को देख सभी जन आनन्द में मग्न हो जाते है और थोड़ी देर के लिये सभी लोग स्वयं को भूल जाते हैं।

अजबे पिरितिया पिरोये हो रामा, चैत चरनियां–2
गत्ते गत्ते उतरी अँगनवा में आवे–2
नरम गदोरिया से ये हो सुहरावे,
हियरे बइठै गज टोवे हो रामा, चैत चरनिया....
अजबे पिरितिया पिरोये हो रामा।।

चैता गवैयों का चैता गाने का एक विशेष ढंग होता है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में पहिले 'आहो रामा' या 'रामा' और अन्त में 'हो रामा' शब्दों का प्रयोग कोरस में तीव्र गति से तार स्वर में किया जाता है। जैसे–

आहो राम सूतल रहलीं पिया संगे सेजिया हो रामा।
बाते बाते, लागि गइले पियवा से रेरिया हो रामा।

इस गीत में 'बाते बाते' दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पदों की पुनरावृति उस पंक्ति के गायन समाप्त होने पर पुनः की जाती है। अर्थात् दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पद टेक पद का काम करते हैं। इसके गाने में प्रथम अवरोह, फिर आरोह और पुनः अवरोह होता है। अर्थात् प्रारम्भ में मन्द्र स्वर, बीच में उच्चस्वर और पुनः अन्त में मन्द्र स्वर का प्रयोग किया जाता है। यह इनकी विशेषता है। चैता प्रेम के गीत हैं अतः इनमें संयोग श्रृंगार की कहानी रागों में लिखी गई है। इन गीतों में कहीं पति के अभाव में गेंहू के कटिया की व्यथा पत्नी अभिव्यक्त करती है तो कहीं पति–पत्नी के प्रणय कलह की झाँकी देखने को मिलती है। कहीं ननद और भावज के पनघट पर पानी भरते समय किसी मनचले की छेड़छाड़ का उल्लेख है तो कहीं सिर पर मटका रखकर दही बेचने वाली ग्वालिनों से कृष्ण जी के 'गोरस' माँगने का वर्णन है। कहीं जानकी के स्वयम्बर की रचना की गई है तो कहीं फूल चुनने के लिये गई हुई किसी नायिका के कोमल हाथ में चुभे काँटे को उसके प्रियतम द्वारा निकालने का विवरण है। प्रियतम के साथ सेज पर सोने वाली स्त्री बहेलिया से निवेदन करती है मेरे अखंड प्रेम में विघ्न डालने वाली कोयल को मार डालो। आशय यह है कि इन गीतों में संयोग श्रृंगार के विभिन्न पहलुओं का बड़ा सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। कोई स्त्री बहेलिया से कह रहीं है–

आहो रामा सूतल रहलीं पिया संगे सेजिया हो रामा।
बिरही कोइलिया, सबद सुनावे हो राम।
बिरही कोइलिया। कोरस में दूसरा दल गाता है।

बहुरा स्त्रियों के लिये पुत्र का व्रत माना जाता है। अतः बहुरा के गीतों में माता का पुत्र के प्रति अकृतिम स्नेह और सत्य प्रतिज्ञा की महिमा का उल्लेख होना चाहिए। परन्तु बहुरा के जो गीत उपलब्ध हैं उनमें यह बात नहीं पाई जाती। प्रस्तुत लेखक ने बहुरा के जिन गीतों का संकलन किया है उनमें सास और बहू का आपसी विरोध ाभाष, पति–पत्नी का प्रेम और सौन्दर्य के कारण किसी व्यक्ति में मोहित होने का वर्णन ही अधिक पाया जाता है। सास की दुष्टता का यह वर्णन–

कोरी नदियवे सासु दहिया जमवली, रचि एक अमरित लावेली जोरनवा ए हरी।
अपने त बेचें सासु गाँव का गोयेड़वा, हरि हरि हमरा के भेज जमुना पार ए हरी।।

दूसरे गीत की रचना देखिये, जिसमें रेशमी नामक सुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर एक राजा मुग्ध हो जाता है। उसका मधुर वर्णन–

पहिरि ओहिरि रेसमी चलली बजरिया,
परिगइले राजावा के दीठी गोरिया रेसमी।
किया गोरी रेसमी रे साँचवा के ढारल।
किया तोहरा के गढ़ेला सोनार गोरिया रेसमी।

होली : होली का त्यौहार फाल्गुन के महीने में मनाया जाता है। बुन्देलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में होली का त्यौहार परम्परागत रूप से मनाया जाता हैं। होली का त्यौहार एकता का प्रतीक है। बसंत पंचमी से गांव के युवा होली जलाने के स्थान पर ईधन इकट्ठा करने लगते हैं। होली का त्यौहार बुन्देलखण्ड में तीन दिन बड़ी धूम–ध ाम से मनाया जाता है। यहां पहली रात को नौजवान टोलियाँ गोवर के बने उपलों को छुराते हैं। अतः कभी–कभी लोगों की कीमती लकड़ी भी चुराकर होलिका दहन में डाल देते हैं। इस रात गाँव के लोग सतर्क होकर उपलों की एवं लकड़ियों की रखवाली करते हैं। फिर नौजवानों की टोलियां निकलती है उनको ''होरी के लरका हुरदंगा, घर–घर मांगें दो–दो कंडा'' का लांछन लगाकर भगा दिया जाता है। फिर भी वह लकड़ी एवं उपले ऐसे चुराते हैं। जैसे आँख से सुरमा चुरा लिया हो।

नौजवानों एवं परिवार के अन्य परिजनों द्वारा दहन की अग्नि को घर ले जाया जाता है। आज का भोजन दहन की अग्नि से ही बनाया जाता हैं। जलाने में उपयोग अलबूला (गोवर के बने गोल–गोल उपले) को किया जाता है। आज के दिन पूरे गांव में, औरतें ऑगन में भट्टियों पर आटे की हाँथों से वगैर चकले बेलन की रोटी बनती है और साथ ही उनके द्वारा फागुनियाँ गीत गाये जाते हैं। इन रोटियों में घी, शक्कर डालकर मलीदा बनाया जाता है। जिसका प्रसाद लगाया जाता है फिर परिवार, पड़ोस में वितरित किया जाता है। इसके बाद

धुरेड़ी व कीचड़ की होली कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में खेली जाती है, जिसमें धूल, मिट्टी, गोवर, कीचड़ का उपयोग किया जाता है, लेकिन कई आँचलिक क्षेत्रों में इसका चलन कम होता नजर आ रहा है।

आज के दिन होली रंग गुलाल से खेली जाती है इस दिन दौज मनाई जाती हे। यह दौज भाई दौज के रूप में पूजी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में रंग गुलाल की होली के दिन रस भरी गुजियां बनाई व बॉटी जाती है एवं प्यार के अनेक रंगों में लोगों को रंग दिया जाता है।

''सपन दिखा परे मोये सैंयाँ सुनों परोसने गुंइयाँ आपुन आय उसीसें ठांडे,

झपट परी में पैंयाँ उनके दृग दोऊ भर आये मोरीं भरीं डबैयाँ 'ईसुर' आँख ढ़गा में खुलगई' हतो उते कोडे नैयाँ'।

रंग गुलाल की होली खेलते समय हुरयारी टोली मस्ती में झूमती हैं। भोले नाथ का प्रसाद जो भांग के रूप में बनता है उसे मिल बॉट कर पीते हैं। इन टोलियों में विभिन्न प्रकार के फगवारे शमिल रहते हैं। कोई नाचता हुआ जाता है, तो कोई ढ़ोलक, तसिया और नगडिया बजाता है और कोई फागें, चौकडियों की तुकें मिलाते हुये जाते हैं। होली उसी गांव में निकालते हैं, जिसमें यह टोली निवासरत होती हैं लेकिन कुछ लोग पास के गॉव से भी फाग में सम्मिलित हो जाते हैं। रंग गुलाल की फाग निकालने के एक दिन पहले गॉव में मुनादी पिटवाई जाती है कि कोई ग्राम वासी बाहर खेत, खलिहान पर नहीं जायेगा, अगर मुनादी के बाद फाग निकालते समय किसी भी परिवार के घर का ताला लगा मिला तो फगवारी टोली उसके दरवाजे के सामने अपशगुन वाली वस्तुऐं रख देते हैं। बहुत ही धूम–धाम से फगवारी टोली के लोग फाग निकालते हैं, इस टोली में केवल पुरुष ही शामिल होते हैं, कुछ बच्चे, वृद्ध आदि भी इनकी टोली में सम्मिलत होते हैं। मस्ती में जगह–जगह रुककर घेर बनाकर ढ़ोलक, तसिया बाले को बीच में कर फागें गाते हैं इन फागों में अधिकतर कवि 'ईसुरी' की चौकड़ियां गाई जाती हैं– चौकड़ियां श्रंगार परक अधिक गाते हुए चलते है–

''मारग आदी रात लौ हेरी, याद बिदरदी तेरी।
पीकत रई पपीरा कैसी, कहाँ लगाई देरी।
छिन भीतर छिन बाहर, ठांडी आँख लगी ना मेरी।
''ईसुर' तलफ–तलफ कैं सौगई, तीतुर बिना बटेरी।''

श्रृंगार परक चौकड़ियां गाते हुये चलते हैं। जिसका उदाहरण अग्रलिखित है–

''मोरी रजऊ से नौंनों को है, डगर चलत मन मोहै।
अंग–अंग में कोल–कोल कें इसुर रंग भरो है।
मन को हरन गाल कौ गुदना, तिल सौ तनक धरै है।
ईसुर कहत उठत जोवन की, विरहा जोर करौ है।''[28]

गोवर्धन पूजा : 'बुन्देलखण्ड में दीपावली के दूसरे दिन महिलाओं द्वारा गोदन को विस्तारित किया जाता है, तथा उनको गोदन का रूप दिया जाता है। जिसे गोदन विस्तारित करना कहते हैं। पुरुषों द्वारा गोदन बनाने की प्रथा लगभग बुंदेली आँचलिक क्षेत्रों में विरले ही जान पड़ती है। ''गोदन का पहले दिन सिर के रूप में पिण्ड मात्र रखा जाता है फिर दूसरे दिन हाँथ, पैर, पेट आदि अंग बना दिये जाते हैं। गोदन पूजा में उड़द का पौध ाा, कटाई, जंगली पौधों में जरिया सैरवैठका (पौधा) इत्यादि चढ़ाए जाते हैं।'' गॉव के कुछ लोग आज के दिन व्रत रखते हैं जिसे मोहनिया व्रत कहते हैं। यह व्रत पूरे दिन मौन रहने के वाद ही तोड़ा जाता है। मुख्य रूप से चरवाहा इस व्रत को रखते हैं। गोदन का अर्थ गायो का धन, गायो की महत्वता प्रकट करने हेतु गाय वैलों की पूजा आरम्भ की गई थी। गाय बैलों की पूजा करने का संबंध बहुत पुराना है। भगवान श्री कृष्ण ने भी भगवान इन्द्र को परास्त कर समस्त पशु एवं मनुष्य जाति को आसरा दिया। भगवान कृष्ण ने भी गुरू पूजा को महत्व दिया। गोदन का बना पिण्ड (सिर) सूर्य भगवान का प्रतीक माना जाता है। गोदन के पेट पर लगी उरई पौधे, की सींके सूर्य की किरणों की प्रतीक मानी जाती हैं। जिस प्रकार मनुष्य के जीवन काल में 'आकाश' पानी, अग्नि, पृथ्वी, हवा आवश्यक है, उसी प्रकार किसान के खेतों के लिए यह पाँच तत्व अत्यधिक आवश्यक माने गए हैं इसी को प्रतीक मानकर गोदन पूजा का चलन बुन्देलखण्ड के कोने–कोने में प्रचलित है।

एकादशी पूजाः बुंदलेखण्ड में ''दीपावली के ग्यारहवे दिन को देव उठानी ग्यारस के रूप में मनाया जाता है। इस ग्यारस को कुमडयाऊ ग्यारस भी कहते हैं क्योंकि इस दिन लाल कुम्हड़े को विशेमा रूप से उपवास में खाया जाता है कुम्हड़े को टुकड़ों में काटकर घड़े में भरते हैं और मैदान में पत्ते बिछाकर घड़े को उसके ऊपर औंध

ाा रख कर उसके ऊपर घास–फूस जलाते हैं जिससे घड़े के अन्दर रख टुकड़े पक जाते हैं। इस तरह पकाया हुआ कुम्हड़ा खाने में स्वादिष्ट होता है। इस प्रक्रिया को औंधा लगाना कहते हैं। ग्यारस के दिन उपवास रखा जाता है।'' जिसके फलाहार में शकरकंद, सिंगाड़े, सिंगारपाव (एक प्रकार की मिठाई) आदि खाये जाते हैं।

बुंदेलखण्ड के छतरपुर, झाँसी, टीकमगढ़, निवाड़ी, दतिया, शिवपुरी आदि जिलों में लगभग एकादशी एक समान मनाई जाती है। यहाँ पूजा करने की प्रथा कुछ अलग ही है। ग्यारस मनाने के लिए कुटुम्ब, कबीलों के लोग एक जगह एकत्रित होकर घर की बाखर में गोबर से लीप कर, आटा, रोली, गुलाल, हल्दी आदि से चौक पूरते हैं। फिर उसमें आठ या दस गन्नों को अगौरों (गन्ने का ऊपरी हिस्सा) को बाँधते हैं। उनको फैलाकर शंकू आकार का बनाते हैं। फिर चौक पर रखते हैं तथा गोबर के गणेश जी बनाकर रखते हैं तथा पूजा सामग्री में बेर, मकोरा, चने की भाजी के कुछ पौधे, नारी (एक प्रकार के पौधे की बेल), खीर, अठवाई, नारियल, घी, तिल आदि का उपयोग किया जाता है। पूजा सम्पन्न होने के पश्चात् काँस (एक प्रकार की घास) को घर के आँगन में युवा लड़के, लड़कियाँ, बहुएँ, औरतें, बच्चे आदि के द्वारा एकत्रित किया जाता है काँस के गट्ठे से कुछ काँस निकालकर उसमें अग्नि लगाई जाती है। फिर उसको अपने–अपने पैरों के नीचे से बार–बार निकाला जाता है। जिसको ओद–बोद कहते हैं। ओद–बोद खेलते समय सबके मुँह से निम्न कहावत का उच्चारण तेज–तेज किया जाता हैं–

ओद–बोद तेलन बऊ की छोत खाज मिटे खुजली मिटें जीवन भर के रोगे मिटे।

यह एक प्रकार से देव उठानी ग्यारस पर खेल होता है। ग्रामीण जनों का मानना है कि जो वर्ष भर में छुआ, छूत हाय, दृष्टि व रोग–दोग होता है वह वर्ष भर के लिए कट जाते है। ग्यारस पूजा की समाप्ति कर प्रसाद वितरण किया जाता है। इनका मानना है कि देव उठाकर ही कोई शुभ कार्य करना चाहिए जिससे कोई विघ्न बाधा न आये और अमंगल का सामना न करना पड़े।

वैशाख की पूजाः वैशाख पूजा बुंदेलखण्ड के कई क्षेत्रों में की जाती है। अधिकतर यह पूजा अमावस्या, दौज, तीज को मनाया जाता है। इसी को छिटकवार पूजा कहा जाता है यह त्यौहार बुंदेलखण्ड के कुछ हिस्सों में देखने को मिलती है। चैत्र की फसल काटने के बाद किसान बैशाख महीने की अमावस्या को खेतों की पूजा करने आते हैं, जिसको छिटकुवार पूजा के नाम से जानते हैं। इस पूजा में किसान की पत्नियाँ बेसन व गुण आटा के गुलगुला, हलुआ, पूड़ी व अन्य पकवान नारियल आदि सामग्री का उपयोग करती हैं। स्त्रियाँ आज के दिन पकवानों से डलियाँ सजाकर ले जाती हैं। देखने को मिलता है कि फसल काटने के बाद छिटकुवार यानी कटाई से बचे हुए कुछ गेहूँ के पौधे छोड़ दिये जाते हैं। उन्हीं गेहूँ के पौधों की आज पूजा होती है। इसका मतलब है कि किसान इन बालियों से आस लगाता है कि हे अन्य की भरी फसल इसी प्रकार से अगली साल भी हमारी डलियों में भर–भर के जाना जिस तरह इस साल गई हो। कई जगह ग्रामीण खेतों की छिटकुवार पूजते समय चार कौड़ियों को चार कोने रखते हैं। जो क्रमशः भूखमाई, प्यासमाई, नींदमाई, आसमाई की प्रतीक होती हैं। इससे तात्पर्य यह है कि हे प्रभु खेती करते समय मुझे इन चारों, भूख, प्यास, नींद और आलस्य को दूर रखना जिससे हम उत्तम फसल उगा सकें।

नव दुर्गाः नव दुर्गा प्रारंभ होने पर बुंदेलखण्ड के गाँव में जवारे बोने की एक प्रथा प्रचलित है। सालभर में दो बार जवारे बोये जाते हैं। अश्विन व चैत्र के माह में जवारे बोये जाते हैं। बुंदेलखण्ड के लोग संकट आने पर घट स्थापना का संकल्प लेते हैं, फिर संकट टलने पर कलश स्थापना करवाते हैं। कई बार बिगड़े कार्य पूर्ण होने पर जवारे बोते हैं। यह प्रथा बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। वर्तमान में शहरी क्षेत्रों में भी जवारे बोने की प्रथा बहुत है।

रक्षाबन्धन : रक्षाबन्धन बच्चन भाई–बहन के परस्पर विशुद्ध प्रेम का त्यौहार है। इसे भ्रातृ–पूजन कहना अनुचित न होगा। यह श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाता है। इस दिन रक्षाबन्धन और श्रावणी दो त्यौहार किये जाते है। 'साहुन' श्रावणी या श्रावण का बुन्देली रूप है। बहनें साल भर इस त्यौहार की बेसब्री से प्रतीक्षा करती हैं। इस दिन घर को लीप–पोत कर साफ सुथरा किया जाता है। भाई–बहन नये परिधान में सुसज्जित होते हैं। बहन–भाई के माधे पर रोली–अक्षत का टीका करती है। उसकी कलाई में रक्षा–सूत्र बांध कर आरती उतारती है। फल–मिठाई खिलाती है और एवज में नेग–दस्तूर प्राप्त करती है।

इस त्यौहार की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए काका कालेलकर ने लिखा है–''यह दिन रक्षाबन्धन का है, जिस तरह भाई दूज निष्काम प्रेम का दिन है वैसा यह दिन नहीं, यह तो निष्काम–रीति से रक्ष्य–रक्षक का नाता

जोड़ने का दिन है। जो लोग स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते, दया करना नहीं चाहते, वे जिन लोगों पर उनका पूरा–पूरा भरोसा होता है, उनसे रक्षा की अपेक्षा रखते है। इसका प्रतीक है राखी। स्त्रियाँ, ब्राह्मण और गाय ये तीन वर्ग रक्षा के अधिकारी माने जाते है।''

इस दिन दरवाजे के दोनों ओर राखी चिपका कर उसकी पूजा की जाती है बहुत घरों में कुलदेवी–देवताओं की पूजा–अर्चना भी इस दिन किया जाता है। ससुराल में भाई के लिये बिसुरती एक बहन की हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति दर्शनीय है–

वीरन! तेरे बिन कोई नइयां, राखी का बन्द बैया।
एक दिना सावन में रै गओ, लेव सुद मोरं भैया।
को ल्याहै मोय मोर–पपीरन–बारी छपी चुनरिया।
को कुष्टन की बनी फूल–बेलन की लाल घंघरिया।
को चंदन को हार, भाल टिकली–की छपक जुनैया।
वीरन ! तेरे बिन कोउ नैया राखी को बंदवैया।

जन्माष्टमीः कृष्ण जन्मोत्सव से संबंधित यह व्रत भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को रखा जाता है। कृष्ण का जन्म अर्द्धरात्रि में रोहिणी नक्षत्र में हुआ था फलतः इसमें दिन भर व्रत रखा जाता है तथा जन्म होने पर प्रसाद ग्रहण किया जाता है। घरों–मंदिरों को साफ–सुथरा कर बाल–गोपाल की विग्रह को पंचामृत में स्नान और श्रृंगारादि करा कर सिंहासन में प्रतिष्ठित किया जाता है। झाँकियां सजाई जाती है। प्रतिमा को झूले पर बिठाकर झुलाया जाता है। यह एक ऐसा व्रत–पर्व है जो राजकीय स्तर पर भी मनाया जाता है। चूंकि कृष्ण का जन्म कंस के कैदखाने में हुआ था इसलिये जेल, थाने पुलिस लाइनों आदि में यह उत्सव अधिक हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। स्त्री–पुरुष समान रूप से इस व्रत को करते हैं। इस समय श्रीकृष्ण की भक्ति से संबंधित गीत गाये जाते है। इस अवसर पर प्रायः सोहर गीत गाने का प्रचलन है।

कृषक के संगी–साथी पशु–पक्षी होते हैं। मोर, गाय, भैंस, घोडी सभी ने बच्चा जना है। यशोदा गर्भ से है अतः उनको भी बच्चा ही होगा, ऐसा लोगों को विश्वास है और यह विश्वास कृष्ण जन्म पर बधाई बजने की आवाज सुन कर पूरा होता है। इस भाव से पूरित यह लोकगीत देखने योग्य है–

बधाई बाजे नन्द घर मोरी आली,
कि मोरी आली पहला मोर बियानी, कि मुतियन चुन घरे मोरी आली।
कि मोरी आली दूजे गाय बियानी, कि बछरन हर चलें मोरी आली।
कि मोरी तीजे भैंस बियानी, कि मटकन दध भमें मोरी आली।
कि मोरी आली चौथे घोड़ी बियानी, कि बछेड़न खुर धरैं मोरी आली।
कि मोरी आली पांचे जसोदा गरम से, कन्हैया जनम लये मोरी आली।

कंस की जेल मथुरा में कृष्ण जन्म के साथ पहरेदारों का सो जाना, वसुदेव का नवजात शिशु को लेकर उफनती यमुना को पार करना, यशोदा की गोदी में कृष्ण को सुलाकर उनकी नवजात कन्या को मथुरा ले आना, कृष्ण की सोने की छुरी से नार छीनना आदि पौराणिक कथा के समानान्तर बुन्देलखण्ड में प्रचलित इस गीत को कृष्ण जन्म पर गाया जाता है–

आली ब्रज में महाराज भये सखी ब्रज में गोपाल भये
जब हरि जन्म लये मथुरा में जगत पहरुवा सोय रहे
लै वसुदेव चले गोकल खों झपट कै जमना मझ्या चरण गहे
आंगू धसे जमना जल गहरी पीछू सिंघ गुंजार रहे
उलटी रीति भई गोकुल में कन्या दे गोपाल लये
कौना जाये कौना खिलाये कौना के लाल कहाये?
देवकी ने जाये जसोदा खिलाये नन्द के लाल कहाये
काहे के छुरा नरा छीनियों काहे खपर असनान
सुन्नें छुरा नरा छीनियों रूपे खपर असनान
काहे के सूप संजोइयो, काहे के आखत डार दये
उरहई के सूप संजोइयों, मुतियन आखत डार दये।

शारदीय नवरात्र तथा दशहरा : आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नौ–दुर्गाओं की पूजा–उपासना की जाती है तथा दसमी को विजय दशमी या दशहरा का त्यौहार मनाया जाता है। अतएव यह व्रत तथा त्यौहार दोनों है। घरों को स्वच्छ कर प्रतिपदा के दिन कलश स्थापन किया जाता है। माँ का आवाह्न कर नौ दिन दुर्गासप्तशती का पाठ तथा माता जी की पूजा–उपासना की जाती है। कुछ लोग प्रतिपदा और अष्टमी दो दिन और कुछ लोग नौ दिन उपवास व्रत करते है। मां की प्रशंसा में गीत गाये जाते हैं। मां के काली रूप का चित्रण इस गीत में देखने योग्य है–

लट छुटकारे लम्बे केस कलाधारिन, लट छुटकारे लम्बे केस हो मां।
सिर में मझ्या तोरे मुकुट विराजे, तो वे ही सोहे माल कला धारिन।
बगम्बर की सारी पहरे, गले मुण्ड की माल कलाधारिन। लट छुटकारे.....
कमर करधनी मझ्या भुजंग की सोहे तो, रक्त चुअत मुण्ड हाथ कला धारिन। लट छुटकारे.
दायें हाथ मझ्या खप्पर बिराजे, बायें तलवार और बाल कला धारिन। लट छुटकारे.....
मधु कैटब मझ्या समर संहारे तो, सुंभ से चण्ड और मुण्ड कला धारिन। लट छुटकारे....
सुमर सुमर मझ्या तोरो जस गावे, भगतन पे रहियों दयाल कला धारिन। लट छुटकारे....

इस प्रकार चौत्र नवरात्र की तरह ही इस नवरात्र में लोग देवी के विभिन्न मंदिरों में जाते है। जात्राएं करते हैं। गीत गाते है देवी के चरणों में शीश झुकाते है।

दीपावली : प्रकाश पर्व दीपावली अज्ञान पर ज्ञान का अन्धकार पर प्रकाश का और दारिद्र पर लक्ष्मी के विजय का पर्व–त्यौहार है। यह कार्तिक की अमावस्या को मनाया जाता है। वैसे यह कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी से प्रारम्भ होकर कार्तिक शुक्ल द्वितीया अर्थात् पांच दिनों तक चलता है। त्रयोदशी को धनतेरस मनाई जाती है। इस दिन नये बर्तनों की खरीददारी की जाती है। संध्या समय स्त्रियां यमदीप जलाकर घर के बाहर रखती है। दूसरे दिन नरक चौदस होती है। पौराणिक कथा है कि इस दिन भगवान श्रीकृष्ण ने नरकासुर राक्षस को मारा था। एक दूसरी कथा के अनुसार वामन भगवान ने इन्हीं तीन दिनों में राजा बलि द्वारा दान की गई भूमि को नापा था। अतः त्रयोदशी से अमावस्या–तीन दिनों तक दीपदान का पौराणिक महत्व है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गोवध्र्ान पूजा तथा दूसरे दिन यमद्वितीया या भैयादूज का पर्व मनाया जाता है।

दीपावली पर गाये जाने वाले गीतों को 'दिवारी गीत' कहा जाता है। इस पर्व पर बरेदी (अहीर) अपने मालिकों के घर जाकर दिवारी गीत गाते है। नाचते है। इनाम पाते हैं। कंधे पर मयूर पंखों का मूठा, कमर में जौंधिये पर घुंघरु, सलूका या बंडी पहने, टिमकी नगड़ियां के समवेत स्वर में दो–दो पंक्तियों के हास्य, व्यंग, नीति, भक्ति, श्रृंगार परक गीतों की कड़ियों को बार–बार दुहराते नाचते, गाते ये लोग खुशियां मनाते हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां दृष्टव्य है–

ब्रिन्द्रावन की गैल में, होन लगी अनरीत। तनक दही के कारने, मौरी बैयां गहत अहीर रे।।
गांव गांव चक्की चली, बउएं भई सुकमार। काम दंद की है नहीं, पै लरबे खो तैयार रे।।
गड़ा की छिरियां बड़ी, अहिरा की बढ़ गई गाय। बामन के बेटा बड़े बऊओं के पर गय काल रे।।

कार्तिक पूर्णिमा (कातिकी पूनो)

यह व्रत कार्तिक पूर्णिमा को किया जाता है। स्त्रियां उपवास रखती है तथा तुलसी की पूजा उपासना करतीं हैं। वैसे तो प्रत्येक दिन प्रातः स्नान के बाद तुलसी को जल–पुष्प चढ़ाया जाता है लेकिन कार्तिक मास की पूर्णिमा को तुलसी की पूजा का विशेष महत्व है कारण तुलसी के विवाह की तिथि जो है। यह विवाह कहीं अक्षय नवमी और कहीं एकादशी को कराया जाता है। इस दिन विष्णु–प्रतिमा को वर–वेष में सजाया जाता है तथा गाजे–बाजे के साथ तुलसी–चबूतरे के पास ले जाकर विधिपूर्वक उनका विवाह कराया जाता है। इस अवसर पर स्त्रियां वैवाहिक मांगलिक, भक्तिपरक गीतों को गाती है।

मकर संक्रान्ति :यह एक ऐसा पर्व–त्यौहार है जो चौदह जनवरी को ही होता है। इस दिन सूर्योपासना की जाती हैं। भारतीय लोक जीवन में सूर्य का अत्यधिक महत्व है। यहां सूर्य एक ग्रह नहीं अपितु देवता है, भगवान है। अन्न–धन प्रदाता, रोगनाशक, आयुर्बलदाता है। हम समय–गणना सूर्य से करते हैं, सूर्योपासक जो ठहरे। प्रातः स्नान के पश्चात् सूर्य देवता को जल देकर लोकजन अपनी आस्था–विश्वास और पूजा उन्हें समर्पित करता है। अधिकांश लोग सूर्य को प्रसन्न करने के लिये वर्ष पर्यन्त रविवार व्रत रखते हैं।

इस दिन लोग नदी, तालाबों–जलाशयों में स्नान करते हैं। तिल, गुड, चावल–दाल, पैसा आदि का दान करते हैं तथा पुण्य कमाते हैं। इस दिन खिचड़ी खाने का महत्व है। पर्व का अपना कोई गीत नहीं है वरन् स्नान करने आते–जाते समय स्त्रियां भक्ति परक गीत गाती है। इन गीतों को रमटेरा' कहा जाता है। एक रमटेरा इस प्रकार है–

दरस की तो बेरा भई रे
बेरा भई रे पट खोलो छबीले भैरो लाल, दरस की तो हो ऽ ऽ।
कुसुम रंग फीके लगे रे, फीके लगे रे सुआ पंखी रंगा दो असदार हो।
दरस की तो हो ऽ ऽ, मिलन को तो बड्या फरके रे।
बड्या फरके रे दरसन खां फरके रहे नैन हो।।

शिव रात्रि : यह व्रत फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को किया जाता है। वैसे तो प्रत्येक महीने में स्त्रियां पार्वती–व्रत प्रदोष तथा स्त्री–पुरूष शंकर व्रत शिवरात्रि का व्रत करते हैं किन्तु फाल्गुन मास की शिवरात्रि का लोकजीवन में अत्यधिक महत्व है। इस तिथि को शिव–पार्वती का विवाह हुआ था। अतएव मंदिरों को सजाया जाता है। शिव की तरथात्रा निकाली जाती है।

खेती किसानी एवं विभिन्न ऋतुओं से सम्बन्धित

ग्रामीणों द्वारा गाये जाने वाले गीतों में रामा, राछरे, बौनी गीत श्रवण गीत, भजन, चकिया के समय (प्रभाती) गाये जाने वाले गीत, गोदना गीत, कटनी, बंधनी वाले गीत, दाँतों में कील ठुकाने वाले गीत, गहनों के गीत, चूड़ी पहनाने वाले गीत विदाई गीत, आदि प्रमुख हैं। कृषक गीतों का बुंदेली जन–सामान्य के जीवन में बहुत अधिक महत्व है। रामा गीत को कृषक खेतों में काम करते समय गाते हैं। इस गीत के अन्त में लाल व रामा लगाते हैं। यह गीत सामाजिक व प्रकृति पर आधारित होते हैं। ये गीत महिलाओं एवं पुरुष दोनों के द्वारा गाये जाते हैं। इन गीतों के अन्त में रामा लगाने से यह रामा कहलाये। रामा गीत का निम्न उदाहरण अवलोकनीय है–

''आये से सेमा डग–मग होवैं, फूले हैं लाल
गुलाल मोरे लाल, कौन वरन वे होवैं बोंडियाँ,
कौन बरन फूले होय मोरे लाल हरदी बरन वे होबैं बोंडियाँ,
कुसुम बरन फूले होय मोरे लाल, पवन चलत, पुरवाई चलत,
कै फूल सब झरजात मोरे लाल, कै फूल च चच चड़े देवी देवतन,
कै फूल रावन जाय मोरे लाल।
नौ फूल चढ़े देवी देवतन, दो फूल रावन जाये मोरे लाल
आये से सेमा डग–मग होवै फूले हैं लाल गुलाल मोरे लाल।''

भैया ने मोखा दई है टिकुनियाँ, भौजी ने लई है छुड़ाय मोरे लाल,

नइंयाँ तो नईयाँ बेटी बाँस टिकुनियाँ, उलियन फुलवा बिनाओ मोरे लाल
आये से सेमा डग–मग होबै फूले हैं लाल गुलाल मोरे लाल
बेटी तो रोई अपने बाबुलन, चुनरी देव रंगाय मोरे लाल
काँसे घने रंग रेज काँसे बुलादें बारे महुविया, काँसे घने रंग रेज मोरे लाल
झाँसी से बुलादे बारे महुबिया, मऊ से घने रंग रेज मोरे लाल
आये से सेमा डग–मग होबैं, फूले हैं लाल गुलाल मोरे लाल
काँतों बसालें बारे महुबिया, कहाँ घने रंगरेज मोरे लाल
बखरिन बसालों बारे महुबिया, पौरन घने रंगरेज मोरे लाल
सुनियो तो सुनियो, भईया रंगरेजी, चूनर हमाई देव रंगाय मोरे लाल,
आये से सेमा डग–मग होबैं, फूले हैं लाल गुलाल मोरे लाल
''छोड़न–छोड़न लिखो सखी सहेली, माँजे ं पपीरा मोर मोरे लाल
लावनन–लावनन लिखो हमरी सहरिया, हवा चले उड़ जाय मोरे लाल
घुँघटन–घुँघटन लिखो बारी ननदिया, कुडई धरैं दब जाय मोरे लाल
छतियन–छतियन लिखो बारे देबरा, बतियाँ करें दिन जाय मोरे लाल
आये से सेमा डग–मग होबें, फूले हैं लाल गुलाल मोरे लाल।''

इस रामा लोकगीत में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया गया है, साल चैत्र और वैशाख के माह में है। इस समय खेतों में रवि की पकी हुई फसल गीत गाने वालों के वाद्ययंत्र बनी हुई है चना और मटर की पकी हुई फली झुनझुना बजा रही हैं और गेहूँ की पकी बालियाँ गीतों से मनमुग्ध होकर झूम रहीं हैं। इस समय सेंमल का पेड़–लाल गुलाल फूलों से लदा हुआ है। यह डग–मग होता प्रतीत हो रहा है। इसकी कली लाल रंग की हैं, जो पकी हुई चैत्र फसल की प्रतीक है। कुसुम व लाल रंग के फूल खिले हैं जो तेज तपती जलती धूप के प्रतीक हैं। लेकिन विरले ही उपयोग में आते हैं परन्तु लोक गीतों में इनको पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ है।

गीतों को गाकर किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते हैं। इन्हीं के बलबूते पर हरे भरे खेत लहलाहाते हुए प्रतीत हुए हैं। किसानों ने तपती धूप वर्षा व ठिकुरती हुई शरद ऋतु में भी इन्ही गीतों का सहारा लेकर विषय परिस्थितियों का सामना किया है और अपने कार्य को पूर्णताः प्रदान की है। कृषक महिलायें दिनभर खतों में कार्य करती हैं। कार्य करते समय वह सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराओं से जुड़े गीतों का आयोजन करती हैं एवं वह गीतों के माध्यम से ग्रामीण संस्कृति को जीवित किये हुए हैं। आज इन गीतों के माध्यम से समाज में लोग प्रेरणा से लाभान्वित हो रहे हैं और आने वाली पीढ़ी इन को सुरक्षित रखने के लिए बाध्य रहेगी। चरवाहा जाति गीतों को वन स्थल व पहाड़ी तथा पठारों में मदमस्त होकर गाते हैं एवं अपने पशुओं के साथ प्रातः से साँझ तक खुशी–खुशी रहते हैं। इनके गीतों की पुकार भली–भाँति ईश्वर तक पहुंचती जान पड़ती है। पशुओं के रक्षक देव कारस महाराज के गुणगान को पूरा बुन्देलखण्ड करता है। कारसदेव बुन्देली ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं को सुरक्षित व दीर्घायु देने वाले हैं। इनके गीतों को गाकर लोग उनकी चमत्कारित घटनाओं का गुणगान करते हैं इनके गीतों में पशुजाति के प्रति स्नेह भाव व महत्वता को उजागर किया जाता है। पशुओं को भी परिवार का हिस्सा समझा जाता है।

निराशापूर्ण जीवन को आशावान व रसमय बनाने में लोकगीतों का स्थान महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार से दादरा गीत समाज में बधु आगमन के समय गाये जान वाले गीत हैं। इन गीतों की महत्वता वधु आगमन पर ही जान पड़ती है। इन गीतों के माध्यम से नव विवाहिता को पूरे परिवार के स्वभाव एवं क्रियाकलापों से परिचित करा दिया जाता है एवं गीतों में ससुराल के रीति–रिवाजों का परिचय भी दिखाई देता है। आज इन गीतों की प्रदेयता समाज में आवश्यक होती नजर आ रही है। ऐसे गीतों को समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए। गीतों का क्रम जीवनपर्यन्त चलता ही रहता है। इस की श्रृंखला का टूटना मुश्किल जान पड़ता है। आगमन के पश्चात जन्म से जुड़े गीतों का भी समाज मे आयोजन किया जाता है। इसमें कुआँ पूजन गीत आंचलिक परिवेश में अति लोकप्रिय हैं। ऐसे गीतों के माध्यम से पवित्र रिस्तों को उजागर किया जताता है। खुशी–खुशी नेगदस्तूर निभाने में समाज के लोग हमेशा तत्पर रहते हैं। गीतों के माध्यम से समाज का विकास किया गया है। गीतों के माध्यम से आने वाली पीढ़ी इन परम्पराओं को सुरक्षित एवं दीर्घकालिक बनाये रहेगी। गीतों का आयोजन विवाह की मधुर बेला पर तो और भी लोकप्रिय है। गीत के बिना विवाह के कई रीतिरिवाज अधूरे से जान पड़ते समाज में विवाह गीतों का आयोजन कर वहाँ एकत्रित नर–नारी इस संस्करण को सफलतापूर्वक पूर्णतः प्रदान करते हैं।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

सन्दर्भ सूची

1. यदु, राजेन्द्र प्रसाद. बुन्देली राउत नाच के दोहों का अनुशीलन. पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, 1992, पृष्ठ 219.
2. यदु, राजेन्द्र प्रसाद. बुन्देली राउत नाच के दोहों का अनुशीलन. पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, 1992, पृष्ठ 233.
3. शुक्ल, दयाशंकर. सोहर और संस्कार गीत. सं. : जमुना प्रसाद कसार. झाँसी :छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक मंजूषा. दुर्ग : जमुना प्रसाद कसार, 2001. पृष्ठ 16.

4. चंदेल, गोरेलाल. बुन्देली ददरिया का तात्विक अनुशीलन. नागपुर : जे.पी. गुप्ता. पृष्ठ 44.
5. ठाकुर, ध्रुवसिंह. बुन्देली लोक में नारी अंतर्मन की व्यथा : सुआनृत्य. सं. कालीचरण. मंडई पत्रिका, 2007. पृष्ठ 154.
6. शुक्ल, उर्मिला. बुन्देली लोकगीतों में नारी मन का चित्रण और स्त्री विमर्श. रायपुर : वैभव प्रकाशन, 2015. पृष्ठ 105.
7. शुक्ला, निशा. बुन्देली लोकगीतों में नारी. सं. : विवेक तिवारी. छत्तीसगढ़ी लोकगीत : दशा एवं दिशा. दिल्ली : मित्तल एंड संस, 2016. पृष्ठ 172.
8. परमार, नारायण. बुन्देली लोकगीतों की भूमिका. रायपुर : पहचान प्रकाशन, 2000. पृष्ठ 70.
9. यादव, पीसीलाल. बुन्देली संस्कार गीत. गंड़ई : दूधमोंगरा, 2009. पृष्ठ 19.
10. यादव, सोमनाथ. बुन्देली के बाँसगीत. नागपुर : जे.पी. गुप्ता. पृष्ठ 50.
11. परमार, नारायण. लोकगीतों की भूमिका. रायपुर : पहचान प्रकाशन, 2000. पृष्ठ 41.
12. श्रीमती गुड्डी देवी अहिरवार के सौजनय से प्राप्त गीत भारत और आधुनिक विश्व तथा लोक प्रशासन, डॉ. ओम नागपाल, पृ. 145
13. मेरे शाश्वत गीत त्रिभुवन नाथ त्रिवेदी, 'गीतेश', पृ. 1
14. लोक गीत' सृजन की अनुभूति, हिन्दी आलेख संग्रह, डॉ. रामनारायण शर्मा, पृ. 37
15. बुन्देली का लोक जीवन, अयोध्या प्रसाद गुप्त 'मुकुद', पृ. 1
16. मेरे शाश्वत गीत त्रिभुवन नाथ त्रिवेदी, 'गीतेश', पृ. 2
17. बुन्देली साहित्य की समीक्षा, डॉ. दिनेश चन्द्र द्विवेदी, पृ. 128
18. बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास, डॉ. रामनारायण शर्मा, पृ. 50
19. बुन्देली काव्यधारा, डॉ. काव्यधारा डॉ. पुनीत विसारिया, पृ. 97
20. बुन्देली भाषा साहित्य का इतिहास, डॉ. रामनरायण, पृ. 96

Cite this Article

'प्रीति सिंह, डॉ0 अलका मौर्य', "बुन्देली लोकगीतों में स्त्री अनुष्ठान", Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:10, October 2025.

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/

DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i100006

Published Date- 03 October 2025